P: ISSN NO.: 2394-0344
E: ISSN NO.: 2455-0817
Remarking
Vol-II * Issue- X* March- 2016

इच्छामृत्यु दयामृत्यु व आत्महत्या पर विधि एवं सामाजिक विश्लेषण

आलेख कुमार साह
वरिष्ठ सहायक प्राध्यापक,
विधि अध्ययन शाला विभाग,
पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय,
रायपुर (छ.ग.)

ए.ए. खान
डीन एवं प्राध्यापक,
विधि अध्ययन शाला विभाग,
पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय,
रायपुर (छ.ग.)

सारांश

विश्व में विगत कई वर्षो से यह विचार–विमर्श चल रहा है कि किसी व्यक्ति को मरने का अधिकार होना चाहिये या नहीं किन्तु अभी तक इस पर विद्वान एक मत नहीं हो पाये हैं। विशेष रूप से इसमें निहित खतरों को देखते हुए यह कहा जाता है कि व्यक्ति को अपना जीवन स्वयं समाप्त करने का अधिकार देना उचित नहीं है। इसका निर्णय कौन करेगा कि किसी व्यक्ति के जीवन की उपयोगिता समाप्त हो गयी हैं एक व्यक्ति के जीवन पर उसके परिवार के लोगों तथा समाज का भी हक होता है। वह अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह कैसे करेगा। इसके अतिरिक्त परीक्षा में फेल हो जाने, प्रेम में असफल होने, राजनोतिक उद्देश्य से आमरण अनशन, नौकरी न पाने में असफल होने पर भी लोग आत्महत्या कर लेते है। स्त्रियों के मामले में भारत में इसका दुरूपयोग किया जा सकता है। दहेज या सती आदि के मामलों में लोग आत्महत्या का मामला सिद्ध करके मुक्त हो सकते हैं। उक्त निर्णय इन प्रवृत्तियों को बढ़ावा देकर समाज में एक गम्भीर सामाजिक समस्या उत्पन्न कर सकता है। जिन्दगी जब बोझ बन जाये कि उसे निभा पाना मुमकिन न हो तो इस दिशा में रोगी के कष्ट को देखते हुए इच्छामृत्यु की अनुमति दिये जाने में बुराई नहीं है। सुविधाओं के अभाव में भी इसकी अनुमति दी जानी चाहिये, इच्छा मृत्यु के समर्थकों का कहना है कि प्राण एवं चेतना अपर व्यक्ति के उस अधिकार को वरियता दी जानी चाहिये कि उसे सहज मृत्यु प्राप्त हो सकें। जबकि इच्छामृत्यु को अनुचित बताने वालों का कहना है कि यह कृत्य नैसर्गिक व्यवस्था के प्रतिकूल है वे इस ईश्वरी आदेश से जोड़कर देखते है और यह मानते है कि जीवन ईश्वर द्वारा प्रदत्त एक सुन्दर सौगात है, ईश्वर ही जीवन का सृजनकर्ता है और उसे ही इसे समाप्त करने का अधिकार है इसलिए जीवन–मृत्यु को ईश्वरीय आदेश पर ही छोड़ देना चाहिये।

मुख्य शब्द : इच्छामृत्यु, दयामृत्यु, आत्महत्या, दुर्खीम विचार, पी.रथिनमवाद।

प्रस्तावना

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत मिले जीवन के अधिकार में किसी व्यक्ति की प्राकृतिक अथवा सामाजिक आयु को घटाने या खत्म करने का अधिकार नहीं आता। आई.पी.सी. की धारा 309 के अन्तर्गत आत्महत्या को अपराध माना गया है, इसलिए कोई भी व्यक्ति अपनी मर्जी से जीवन को खत्म करने का अधिकार नहीं रखता है। इतना ही नहीं यदि कोई अन्य व्यक्ति किसी पीड़ित व्यक्ति के कष्ट को समाप्त करने के लिए ही सही, दया मृत्यु की मांग करता है तो उस पर आई.पी.सी. की धारा 304 के तहत हत्या के प्रयास का मामला चलाया जा सकता है।

इस मनाही का कानून के मानवीय स्वरूप से जोड़ा गया है, विजय से जुड़े प्रश्न के विश्लेषण के लिए यहा सर्वोच्च न्यायालय के उस निर्णय का उल्लेख आवश्यक है जो मार्च 2011 में अरूणा रामचन्द्रन शानबाग के प्रकरण में सुनाया गया था, इस निर्णय में यह कहकर कि वर्तमान में देश में इच्छा मत्यु पर कोई कानून नहीं है, दयामृत्यु की याचिका को खारिज कर दिया गया था, इच्छा मृत्यु अत्यन्त संवेदनशील मुद्दा है तथा वैध घोषित करने से पहले इसके विधिक पहलुओं पर गौर करना आवश्यक है :–

"A" इस प्रश्न के दो पहलू है :–

1. इच्छा मुत्यु से असहमति जताने वालो का कहना है कि भारत में सेवाभाव की प्रधानता रही है अतः मरणासन्न व्यक्ति की अन्तिम सांस तक सेवा करनी चाहिए भले ही वह कितनी भी कष्टप्रद अवस्था में क्यों न हो। भारतीय संस्कृति में यह उचित भी है।
2. दूसरा उस व्यक्ति की मर्जी का विशेष महत्व है कि मौत उसे बेहतर विकल्प तो नहीं लगा रही है ?[1]

P: ISSN NO.: 2394-0344
E: ISSN NO.: 2455-0817
Remarking
Vol-II * Issue- X* March- 2016

जिन्दगी जब बोझ बन जाये कि उसे निभा पाना मुमकिन न हो तो इस दिशा में रोगी के कष्ट को देखते हुए इच्छामृत्यु की अनुमति दिये जाने में बुराई नहीं है। सुविधाओं के अभाव में भी इसकी अनुमति दी जानी चाहिये, इच्छा मृत्यु के समर्थकों का कहना है कि प्राण एवं चेतना पर व्यक्ति के उस अधिकार को वरियता दी जानी चाहिये कि उसे सहज मृत्यु प्राप्त हो सकें।

जबकि इच्छामृत्यु को अनुचित बताने वालों का कहना है कि यह कृत्य नैसर्गिक व्यवस्था के प्रतिकूल है वे इसे ईश्वरी आदेश से जोड़कर देखते है और यह मानते है कि जीवन ईश्वर द्वारा प्रदत्त एक सुन्दर सौगात है, ईश्वर ही जीवन का सृजनकर्ता है और उसे ही इसे समाप्त करने का अधिकार है इसलिए जीवन–मृत्यु को ईश्वरीय आदेश पर ही छोड़ देना चाहिये।

उद्देश्य

1. मरने के अधिकार की विधिक व्याख्या
2. दयामृत्यु का सामाजिक प्रभाव
3. इच्छामृत्यु की संवैधानिकता
4. अरूणा शानबाग केस का प्रभाव
5. पैंरेस पेट्रिया सिद्धान्त का औचित्य

ऐतिहासिक स्वरूप

दयामृत्यु शब्द (Euthunasia) की व्याख्या ग्रीक शब्द में की गई थी। जिसका आशय है Good Death थी तथा इसे Passive Death कहा जाता था। जिसका विधिक अर्थ Order in Provide Death था। इन शब्दों का प्रयोग Mercy Killing के लिये किया गया था, जिसका सबसे पहले प्रयोग नाजी राज्य में 1933 में किया गया था। इसके बाद रोमन राज्य में इसका प्रयोग किया गया था। जिसे अपराध माना गया था और कहा गया था कि Vita Caesrum – Divas Augusts the defied Augustas – Death of Augustus Caesar.[2]

Jewish Society (Bible) में कहा गया था – Thou shall not kill and Enthanasia is Murder/Suicide अर्थात इच्छामृत्यु या दयामृत्यु की मनाही थी। ग्रीस एवं पेथोजियस मे इस प्रकार की मृत्यु को पूर्णतः प्रतिबंधित किया गया था। तथा राजा, महाराजा शासक किसी को भी किसी व्यक्ति के जीवन को छोनने का अधिकार नहीं था और कहा गया था कि ईश्वर के अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति किसी व्यक्ति के जीवन को समाप्त करने का अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता। यद्यपि 15वीं एवं 16वीं शताब्दियों में सर थामस मोरे (1478–1535) के लेख से यह ज्ञात हुआ है कि इस प्रकार की मृत्यु को मरीज की सहमति पर चिकित्सक या वैद्य को ऐसा अधिकार प्राप्त था। ऐसा ही उल्लेख अंग्रेज दर्शनशास्त्री फ्रेंसिस बेकन (1561–1621) ने भी किया था।[3]

18वीं एवं 19वीं शताब्दियों के बीच ''Prussia'' शब्द का उल्लेख मिलता है। जिसका अर्थ था नार्थ यूरोप के सम्राट को सैन्य शक्ति के अंतर्गत 1871–1947 तक इच्छामृत्यु देने का अधिकार प्राप्त था तथा 1 जून 1794 को इसके लिए दण्डविधि भी बनाई गयी थी। 05/05/1980 के एक लेख (The Times of India) से पता चला कि कैथोलिक चर्च ने इस तरह की मृत्यु की स्वीकृति दी थी।

1976 में ''नेशनल राईट्स टू डाई सोसायटीज'' के संबंध में जापान में एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ था जिसमें जापान, आस्ट्रेलिया, नीदरलैण्ड, इंग्लैण्ड, अमेरिका, जर्मनी, कनाडा देशों ने भाग लिया तथा इच्छामृत्यु की स्वीकृति के संबंध में गहन विचार विमर्श किया गया और कहा गया कि इसके परिणामों व दुष्परिणामों का अध्ययन कर प्रत्येक देश अपने देश के परिस्थितियों के अनुसार उसे स्वीकृति प्रदान करें।

भारत के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाये तो ''आत्मकथा'' नामक ग्रंथ में इस तरह की मृत्यु को प्रतिबंधित किया गया था तथा ''धर्मसूत्र'' में भी प्रतिबंधित किया गया था। इच्छामृत्यु को इस्लाम धर्म भी आत्महत्या मानता है। जिसे कुरान में निषिद्ध किया गया है और ईश्वरीय आदेश में कहा गया है कि ''.....और अपने आप को हलाल मत करो। कोई शक नहीं कि खुदा तुम पर मेहरबान है''[4]

आत्महत्या यानी आत्मा को शरीर से त्यागना. एक राय यह भी रही है कि अगर–कोई असाध्य रोग से ग्रस्त है तो उसे इच्छा–मृत्यु का अधिकार दे दिया जाए तो इसमें बुराई ही क्या है. घोर शारीरिक और मानसिक कष्ट झेलने वाला शख्स अगर इच्छा मृत्यु का मार्ग अपनाने की चेष्टा में असफल रहता है तो उसे जेल भेजा जाना कहां तक समझदारी है. पर, पहले तो यही हो रहा था. आत्महत्या करने की कोशिश करने वाले शख्स को काउंसलिंग को जरूरत है ना कि जेल भेजे जाने की. अगर आप भारतीय शास्त्र का अध्ययन करेंगे तो आप पाएंगे कि हमारे यहां इच्छा मृत्यु पुरातन काल से चल रही है. राम ने भी सरयू नदी में जाकर जल समाधि ली थी जब उन्हें लगा कि उन्होंने धर्म की स्थापना कर दी है. इस तरह के अनेक उदाहरण हमें मिलते हैं जब संतों ने इच्छा मृत्यु के मार्ग को सहर्ष स्वीकार किया. आत्महत्या को लेकर चलने वाली किसी बहस के दौरान कुछ सवाल स्वाभाविक रूप से उभरते हैं कि कोई व्यक्ति आत्महत्या क्यों और कब करता है? यह भी देखा गया है कि निरंतर मिलने वाली नाकामयाबी के चलते भी बहुत से लोग घोर नैराश्य में डूब जाते हैं. ये ही अपनी जीवनलीला समाप्त करने का असाधारण निर्णय लेते हैं. अधिकांश मामलों में पाया गया है कि यह कदम क्षणिक भावावेश में उठाया जाता है. प्रेम में असफलता, परीक्षा में आशा के अनुरूप परिणाम न आना, पारिवारिक तनाव और आर्थिक परेशानी, आत्महत्या के पीछे आम तौर पर इसी तरह के कारण होते हैं. नैराश्य में डूबे लोगों के प्रति पूरी सहानुभूति का भाव रखते हुए भी आत्महत्या को स्वीकार नहीं किया जा सकता. कौन सा इंसान है, जिसके जीवन में निराशा, असफलता और अवरोध नहीं आते हों. हर इंसान के हिस्से में सुख–दुख आते हैं. इसलिए बेहतर तरीके से जीने के बारे में सोचा जाए ताकि मृत्यु के मार्ग पर चला जाए. क्योंकि मृत्यु तो आनी ही है देर–सवेर।

सामाजिक विधिक एवं संवैधानिक व्याख्या

विधिक अर्थ में दया मृत्यु (Mercy killing) से आशय है कि ''जो व्यक्ति किसी असाध्य रोग से निर्जीव स्थिति में पड़ा शारीरिक वेदनाएँ या यातनाएँ भोग रहा है क्या उसे चिकित्सक की सहायता से स्वयं के जीवन का अन्त करने की अनुमति दी जानी चाहिये? या कृत्रिम

स्वांस संयंत्र के सहारे वर्षो से जी रहा है और चिकित्सक की राय में कृत्रिम स्वांस नहीं हटाने से उसकी मृत्यु होना सुनिश्चित है तो ऐसी स्थिति में इस रोगी की प्राकृतिक मृत्यु के पूर्व श्वांस नली हटाकर उसके परिवारजनों की मांग पर उसका जीवन समाप्त करने की अनुमति दी जानी चाहिये? भारत में वर्तमान विधि के अनुसार चिकित्सक के साथ–साथ परिवार वालें भी उसके हत्या के दोषी होंगे।

इसके अतिरिक्त कभी–कभी एड्स या कैंसर रोग के अन्तिम चरण को प्राप्त हुआ व्यक्ति जिनका मृत्यु निकट चिकित्सक की राय में सुनिश्चित है और जितने दिनों तक वह जीवित रहेगा या समाज या परिवार के लिए घातक तकलोफ देय है तो क्या रोगियों को विधि अनुसार इच्छा मृत्यु की अनुमति देनी चाहिये।[5]

यह एक ऐसा संवेदनशील मुद्दा है जिस पर किसी भी सरकार को कानून बनाने के पहले आम सहमति बना पाना मुश्किल है, इसलिए विश्व के अनेक विकसित एवं विकासशील देशों में इसकी विधिक वैधता को लेकर बहस छिड़ी हुई है। भारत, ब्रिटेन, स्पेन, फ्रांस और इटली जैसे ज्यादातर देशों में इच्छा मृत्यु अभी भी गैर कानूनी है। अमेरिका, स्वीट्जरलैण्ड, नीदरलैण्ड के नियम में इच्छा मृत्यु पूर्णतः नहीं बल्कि आंशिक रूप से स्वीकार्य है :

अमेरिका

अमेरिका में सक्रिय इच्छा मृत्यु गैर कानूनी है, परन्तु ओरेगन, वांशिगटन और मोटावा राज्यों में डॉक्टर की सलाह और उसकी मदद से मरने की इजाजत है। फ्रांस एवं ब्रिटेन में संसद के समक्ष विचाराधीन है।

स्विट्जरलैण्ड

स्विट्जरलैण्ड में स्वयं ही जहरीली सुई लेकर आत्महत्या करने की इजाजत है हालांकि इच्छा मृत्यु गैर कानूनी है।

नीदरलैण्ड्स

नीदरलैण्ड्स में डॉक्टर के हाथों सक्रिय इच्छा मृत्यु और मरीज की मर्जी से दी जाने वाली मृत्यु को दण्डनीय अपराध नहीं माना गया। 1984 में नीदरलैण्ड के सुप्रीम कोर्ट ने शर्तो के साथ इच्छामृत्यु के लिये सहमति दी थी।

बेल्जियम

बेल्जियम में सितम्बर 2002 से इच्छा मृत्यु को वैधानिक किया जा चुका है।

रूस

1922 में ऐसी मृत्यु के सबंध में दण्डविधि बनाई गई थी। यद्यपि रूस की संसद में पूर्णरूप से पास नहीं हो पाया।

आस्ट्रेलिया

1995 से आस्ट्रेलियाई संसद ने इच्छामृत्यु की स्वीकृति संबंधी विधि बना दी।

न्यूजीलैण्ड

2004 से न्यूजीलैण्ड संसद ने इच्छामृत्यु की स्वीकृति संबंधी विधि बना दी।

हालैण्ड

हालैण्ड में इसे विधिमान्यता है 2000 से,

परन्तु इस मुद्दे पर जल्दबाजी में कोई कानून बनाना घातक हो सकता है, इसका ताजा उदाहरण आस्ट्रेलिया में घटित हो चुका है, आस्ट्रेलिया ही वह देश है जहाँ सबसे पहले वर्ष 1995 में इच्छा मृत्यु को कानूनी मान्यता प्रदान की गई थी परन्तु देखते ही देखते इच्छा मृत्यु की बाढ़ सी आ गई आए दिन इसके दुरूपयोग के मामले सामने आने लगे। वृद्ध, असहाय, दुर्बल लोग इस विधि के ग्रास बनने लगे जिसके कारण आस्ट्रेलिया संसद ने 25 मार्च 1997 को इस कानून को समाप्त कर दिया।

भारत जैसे देश में जहाँ गरीबी, भ्रष्टाचार और अराजकता के साथ पारिवारिक विघटन, एकाकी परिवार क चलन की बाढ़ हैं, जहाँ माता–पिता और वृद्ध असहायों की उपेक्षा की संस्कृति बलवती हो गई है वहाँ इच्छा मृत्यु को कानूनी मान्यता देते समय सावधानी बरतनी होगी, दहेज दानव जिस देश में विकराल रूप धारण किया हो कहीं यह कानून उनके लिए ब्रम्हास्त्र साबित न हो जायें। इसलिए इस कानून को संवैधानिक मान्यता देने से पहले ऊपर लिखी सामाजिक समस्याओ पर एक विस्तृत परिचर्चा कराई जानी चाहिए। ऐसी परिचर्चा करते समय कानूनी, सामाजिक, नैतिक एवं मानवीय सभी पहलुओं पर ध्यान रखा जावे ताकि इस कानून का कही दुरूपयोग की संभावना न हो अर्थात उक्त कानून के उपयोगी पहलुओं पर ध्यान देने के बजाय उसके सम्भावित दुरूपयोगों के प्रत्येक बिन्दुओं पर संसद में बहस कराई जावें। हमारे देश में वृद्धों की स्थिति पहले से ही चिन्तनीय है। भ्रष्ट व्यवस्था ने सारे सामाजिक व नैतिक पैमाने ध्वस्त कर रखे है। वृद्धों की व महिलाओं के दहेज उत्पीड़न के मामले रोज हमारे सामने खड़े है, इसलिए पूरी सम्भावनायें हमारे देश में इसके दुरूपयोग की है, वैधानिक स्थिति को हथियार बनाकर यदि इसका दुरूपयोग किये जाने लगा तो स्थिति अत्यन्त भयावह, विकराल और अराजक हो जायेगी, हमारे सामने नई चुनौतियां आयेगी। स्वास्थ्य सेवायें आम आदमी के पहुंच से बाहर हो चुकी है, रोजी, रोटी, कपड़ा, मकान गरीबो के लिये मृग तृष्णा हो गई है। ऐसी दशा में यदि इच्छा मृत्यु को कानूनी रूप दे दिया जावें तो असहाय एवं गम्भीर रोगियों व गरीबों की इच्छा मृत्यु के नाम पर हत्याओं की बाढ़ आ सकती है।

पूंजीवादी समाज में जहाँ मानवीय सरोकार दिनोदिन समाप्त होते जा रहे हैं वहाँ पर इच्छा मृत्यु के नाम पर लाखों मरणासन्न लोगों को अनइच्छित मौत की तरफ धकेला जा सकता है। गिरती मानवीय सरोकारों एवं सामाजिक जीवन से परसती जा रही है अनैतिकता को देखते हुए ऐसे किसी भी फैसले के भयावह पहलुओं का भी आकलन किया जाना होगा।

दुर्खीम का विचार व प्रभाव

दुर्खीम ने उन कारणों का वर्णन किया है जिनसे दुर्खीम को आत्महत्या जैसे विषय का अध्ययन करने की प्रेरणा मिली। इस अनुसन्धान के द्वारा वे निम्नलिखित उद्देश्यो की पूर्ति करना चाहते थे। सन् 1886 में जब दुर्खीम इकोल में प्राध्यापक थे, तो उनके घनिष्ठतम मित्रों में से एक, विक्टर होम्मे, ने आत्महत्या कर ली थी। इस घटना ने उन पर गहरा प्रभाव डाला और उनके मन में आत्महत्या का स्पष्टीकरण खोजने की इच्छा पैदा कर दी।

दुर्खीम आत्महत्या की परिभाषा इस प्रकार देते हैं–''आत्महत्या शब्द का प्रयोग मृत्यु के उन सभी प्रकारों के लिए किया जाता है जो कि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष

P: ISSN NO.: 2394-0344
E: ISSN NO.: 2455-0817
Remarking
Vol-II * Issue- X* March- 2016

आत्महत्या करने वाले व्यक्ति के सकारात्मक अथवा नकारात्मक कार्य का परिणाम है, जिसका कि उसे ज्ञान है।'' यही कार्य अगर वास्तविक मृत्यु से कम है अर्थात् अगर आत्महत्या के प्रयास में व्यक्ति बच जाता है तो इसे आत्महत्या न कहकर आत्महत्या का प्रयास कहा जाता है। इस प्रकार दुर्खीम आत्महत्या की परिभाषा करते हुए इसमें दो तत्वों का समावेश आवश्यक समझते हैं–

1. आत्महत्या करने वाला स्वयं अपनी मृत्य का कारण होता है, चाहे वह अपनी मौत के लिए कोई ठोस कदम उठाए अथवा किसी ऐसे कार्य की उपेक्षा कर दें जिसके करने से उसका जीवन बच जाता और जिसके न करने से निश्चित रूप से मृत्यु हो जाती।
2. आत्महत्या करने वाला यह जानता है कि वह क्या करने जा रहा है और उसका क्या परिणाम होगा। दूसरे शब्दों में, अपनी मौत के लिए उत्तरदायी कार्य करते हुए वह व्यक्ति न किसी नशे की हालत में था, न किसी भ्रम में था और न किसी दबाव में ही था।

भारतीय समाज में आत्महत्या की समस्या/अस्पतालों में मृत प्रायः मरीजों की स्थिति

आत्महत्या की प्रति समुदायों एवं समाजों की प्रतिक्रिया एक समान नहीं रही है। ईसाई धर्म के अनुसार आत्महत्या पाप है, जब कि हिन्दु धर्म के अनुसार ऐसा नहीं है। हिन्दु दर्शन में ही अनेक प्रकार की आत्महत्याएँ सन्निहित रही हैं जैसा कि पर्योपवेश अर्थात मृत्यु तक अनशन, आत्मार्पण अर्थात स्वबलिदान, समाधि, अर्थात सांस रोककर प्राण त्याग देना तथा अनेक महिला आत्महत्याएँ जैसे जोहर अर्थात सामूहिक आत्मदाह एवं सती इत्यादि। यद्यपि आज आत्महत्याओं के ये प्रकार समाप्त प्रायः हो गए हैं, फिर भी आत्महत्या एक गम्भीर समस्या है जो कि नवीन रूप से हमारे सामने है। सन् 2014 के आँकड़ों के अनुसार विभिन्न राज्यों में प्रति हजार जनसंख्या पर आत्मदाह की दर निम्न प्रकार है–आंधप्रदेश (8.58), असम (11.57), बिहार (10.2), गुजरात (8.28), हरियाणा (6.59), हिमाचल प्रदेश (6.12), जम्मू कश्मीर (3.37), कर्नाटक (18.29), करल (25.16), महाराष्ट्र (11.20), मध्य प्रदेश (10.85), मनीपुर (7.90), मेघालय (7.61), नागालैंड (5.06), उड़ीसा (13.77), पंजाब (7.15), राजस्थान (9.75), सिक्कम (10.40), तमिलनाडु (16.37), त्रिपुरा (31.87), उत्तर प्रदेश (7.24) तथा पश्चिमी बंगाल (17.63)। इन आँकड़ों से हमें यह पता चलता है कि त्रिपुरा में आत्महत्या की दर भारत में सर्वाधिक है तथा इसके बाद केरल, कर्नाटक तथा पश्चिम बंगाल का स्थान आता है। जम्मू व कश्मीर में सबसे निम्न दर पाई गई।

भारत के विभिन्न अस्पतालों में ''मृत प्रायः'' मरीजों की संख्या (स्त्रोत छत्तीसगढ़ राज्य के 5 अस्पतालों से ली गई संख्या को देश की जनसंख्या के अनुपात में निकाल कर आंकड़े अनुमानित आधार पर दर्शाये गये है)

क्रम संख्या	वर्ष	मृत प्रायः मरीजों की संख्या
1	2005	3762
2	2006	5613
3	2007	6310
4	2008	8520
5	2009	9130
6	2010	10410
7	2011	11430
8	2012	12525
9	2013	41730
10	2014	49710
11	2015	51550

सन् 2014 में विभिन्न अस्पतालों में मृत प्रायः मरीजों का लिंग व आयु के अनुसार विवरण

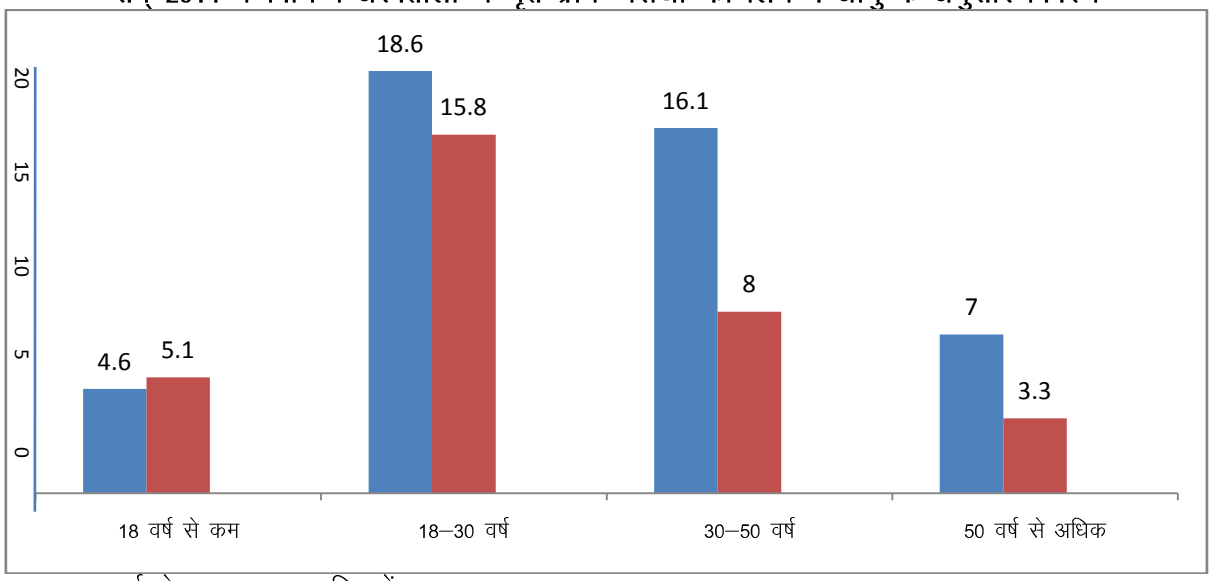

1. 18 वर्ष से कम : 4.6% महिलायें, 5.1% पुरूष
2. 18 वर्ष से 30 वर्ष : 18.6% महिलायें, 15.8% पुरूष
3. 30 से 50 वर्ष : 16.1% महिलायें, 8% पुरूष
4. 50 वर्ष से उपर : 7% महिलायें, 3.3% पुरूष

उपर्युक्त आंकड़ों से पता चलता है कि सबसे अधिक मृतप्रायः स्थिति में युवा वर्ग है।

''संविधान के अनुच्छेद 21 ब भारतीय दण्ड संहिता की धारा 309 की संवैधानिकता''– ''इच्छामृत्यु/दयामृत्यु ?''

विश्व में विगत कई वर्षो से यह विचार–विमर्श चल रहा है कि किसी व्यक्ति को मरने का अधिकार होना चाहिये या नहीं किन्तु अभी तक इस पर विद्वान एक मत नहीं हो पाये हैं। विशेष रूप से इसमें निहित खतरों को देखते हुए यह कहा जाता है कि व्यक्ति को अपना जीवन स्वयं समाप्त करने का अधिकार देना उचित नहीं है। इसका निर्णय कौन करेगा कि किसी व्यक्ति के जीवन की उपयोगिता समाप्त हो गयी हैं एक व्यक्ति के जीवन पर उसके परिवार के लोगों तथा समाज का भी हक होता है। वह अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह कैसे करेगा। इसके अतिरिक्त परीक्षा में फेल हो जाने, प्रेम में असफल होने, राजनीतिक उद्देश्य से आमरण अनशन, नौकरी न पाने में असफल होने पर भी लोग आत्महत्या कर लेते है। स्त्रियों के मामले में भारत में इसका दुरूपयोग किया जा सकता है। दहेज या सती आदि के मामलों में लोग आत्महत्या का मामला सिद्ध करके मुक्त हो सकते हैं। उक्त निर्णय इन प्रवृत्तियों को बढ़ावा देकर समाज में एक गम्भीर सामाजिक समस्या उत्पन्न कर सकता है।

1987 में बम्बई उच्च न्यायालय ने **महाराष्ट्र राज्य बनाम श्रीपति दुबल**[6] के मामले में यह अभिनिर्धारित किया था कि दण्ड संहिता की धारा 309, जिसके अधीन आत्महत्या एक अपराध है, संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन करती है ; अतः अवैध है। अनु. 21 के अधीन जीने के अधिकार (right to live) में मरने का अधिकार (right to die) भी शामिल है; अतः धारा 309 जो इस अधिकार को छीनती है अनु. 21 का उल्लंघन करती है तथा अवैध है। मरने की इच्छा अस्वाभाविक नहीं है, यह केवल असाधारण और विलक्षण है। कतिपय परिस्थितियों में व्यक्ति का जीना एक भार स्वरूप हो जाता है। प्रस्तुत मामले में बम्बई के एक पुलिस कान्सटेबल ने नगर निगम द्वारा जीविकोपार्जन के लिए एक दुकान स्थापित करने की अनुमति से इनकार किये जानें पर निराश होकर नगर निगम के अधिकारी के कमरे में ही आग लगाकर आत्महत्या करने का प्रयास किया। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वह दोषी नहीं था क्योंकि ऐसी स्थिति में उसके पास कोई विकल्प नहीं था और अनु. 21 उसे यह अधिकार प्रदान करता है। इसके विपरीत आन्ध्रप्रदेश उच्च न्यायालय ने **चेन्ना जगादेश्वर बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य**[7] के मामले में यह अभिनिर्धारित किया था कि अनु. 21 में प्रदत्त जीवन के अधिकार में मरने का अधिकार नहीं आता है अतः दण्ड संहिता की धारा 309 अनु. 21 का उल्लंघन नहीं करती है और संवैधानिक है।

1994 में **पी. रथिनम नागभूषण पटनाईक बनाम भारत संघ**[8] के मामले में उच्चतम न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि संविधान के अनु. 21 के अन्तर्गत जीवन के अधिकार के अन्तर्गत ''मरने का अधिकार'' भी सम्मिलित है अतः भारतीय दण्ड संहिता की धारा 309 जिसके अन्तर्गत ''आत्महत्या का प्रयास'' करना एक दण्डनीय अपराध है वह असंवैधानिक है और अवैध है। न्यायालय ने कहा कि भारतीय दण्ड संहिता का उक्त उपबन्ध क्रूर तथा न्याय विरूद्ध है क्योंकि वह ऐसे व्यक्ति को दण्ड देने का प्रावधान करता है जो पहले से पीड़ित है और जिसे मानसिक रोग से जूझने की सलाह की आवश्यकता है और दूसरों को कोई हानि नहीं पहुँचाता है। ''आत्महत्या का प्रयास'' नैतिकता, धर्म, समाज या लोक नीति के विरूद्ध भी नहीं है। प्रस्तुत मामले में पिटिशनरों न, जिनके विरूद्ध धारा 309 के अधीन किए गए अपराध के लिए कार्यवाही की जा रही थी, धारा 309 की संवैधानिकता को चुनौती दी थी। न्यायालय ने कहा कि विश्व के अनेक देशों में आत्महत्या का प्रयास अपराध नहीं है। न्यायालय ने मुम्बई उच्च न्यायालय द्वारा **मारूती श्रीपति दुबल**[9] क मामले में दिए निर्णय का अनुसरण किया।

प्रोफेसर वी.वी. पाण्डेय ने भी अपने विचारात्मक लेख में उक्त निर्णय की आलोचना की है। उन्होंने तीन मत व्यक्त किया कि :

पहला मत यह है कि ''मरने का अधिकार'' की अपेक्षा अन्य अधिकार जैसे भोजन, आश्रय, कपड़ा, चिकित्सा सुविधा और पीने का शुद्ध पानी आदि जो मानव जीवन के लिए अधिक उपयोगी हैं, यहाँ तक कि भारत में काम के अधिकार को मान्यता नहीं दे पाये है। क्या एक व्यक्ति के मरने का अधिकार इन अधिकारों से ऊपर है। क्या निःशुल्क प्राइमरी शिक्षा जो देश की 50 प्रतिशत जनता को प्रभावित करती है उसे 43 वर्ष की प्रतीक्षा के पश्चात् हम प्राप्त कर सकें। ऐसी दशा में मरने का अधिकार, जो केवल कुछ व्यक्तियों को प्रभावित करता है उसके मान्यता की क्या आवश्यकता है ?

दूसरे मरने के अधिकार की मान्यता निषेधात्मक है क्योंकि इसमें राज्य को कुछ नहीं करना है जबकि अन्य अधिकारों की मान्यता जेसे सड़क या स्कूल बनाने के लिए पैसा दिये जाने पर राज्य को एक सकारात्मक भूमिका निभानी होगी।

तीसरी बात यह है कि किसी व्यक्ति का मरना उचित है कि नहीं, कौन निर्णय करेगा राज्य, व्यक्ति या परिवार के लोग। अधिकार के साथ कर्त्तव्य भी होता है। क्या व्यक्ति का परिवार, राज्य, समाज के प्रति कोई कर्त्तव्य नहीं हैं ? उसके परिवार के सदस्य विशेष रूप से उसकी नाबालिग सन्तानें जो उससे आशा करती हैं कि वह उनका पालन–पोषण करें।

न्यायालय ने उपर्युक्त सामाजिक तत्वों पर विचार नहीं किया और अन्य विकसित देशों जहाँ उक्त समस्याएँ नहीं हैं उनके आधार पर भारत में मरने के व्यक्तिगत अधिकार को प्राथमिकता प्रदान की है यह उचित नहीं है और इसके कई गम्भीर परिणाम हो सकते हैं, जैसे सती के मामले या राजनैतिक हथियार के रूप में भूख हड़ताल के मामले, दहेज के मामले, गरीबी, मूलभूत सुविधाओं के अभाव में आत्महतया करने के मामले, परीक्षा में फेल होने वाले अपरिपक्व छात्रों के मामले, प्रो. पाण्डेय का मत सहीं है। यदि हम उपर्युक्त समस्याओं का निराकरण कर दें तो आत्महत्या करने वालों की संख्या नगण्य हो जायेगी। लेखक ने उपर्युक्त समस्याओं के सम्बन्ध में **मारूति दुब्बल**[10] के मामले में मुम्बई उच्च न्यायालय के विनिश्चिय पर विचार व्यक्त करते हुए इंगित किया था। मेरे विचार से भी इसके दुष्प्रभावों का उल्लेख करना चाहता हूँ कि

किस तरह से समाज के लोग ऐसे अधिकारों की प्राप्ति पर इसका दुरूपयोग करेंगे। उदाहरण के लिये

भारत में इच्छामृत्यु एवं दयामृत्यु के दुष्परिणामों का निम्नलिखित ताजा उदाहरण से देखा जा सकता है कि इसका दुरूपयोग किस तरह से लोग करेंगे।

1. बिहार में दुष्कर्म पीड़िता ने न्याय के लिये इच्छामृत्यु की मांग की थी क्योंकि उसके चाचा मुकुंद सिंह उसे हवस का शिकार बनाया था। (पटना के मुकुंद सिंह का केस)
2. भूखमरी की कगार में पहुंचे उत्तरप्रदेश के शुगर मिल 700 कर्मचारियों ने इच्छामृत्यु की मांग की।
3. हरियाणा के गुडगांव के बंधवाडीह गांव के 10 सदस्यों ने दबंगों के जुल्म से तंग आकर इच्छामृत्यु की मांग की थी।
4. इलाहाबाद के पीड़गंज के 3 वर्षीय पुत्री के लिये एक मजबूर बाप इच्छामृत्यु की मांग कर रहा है क्योंकि उसकी पुत्री ''प्लास्टिक एनीमिया'' नामक बीमारी से ग्रस्त है।
5. उत्तरप्रदेश के फतेहपुर जिले के सिपाही हरीशचंद्र ने गंभीर बीमार होने के बावजूद 15–16 घंटे अधिकारिया के द्वारा ड्यूटी लिये जाने से तंग आकर इच्छामृत्यु की मांग की।

फॉन देन ब्लीकन 51 वर्ष का है जिन्होंने बेल्जियम सरकार से इसलिए इच्छामृत्यु की मांग की कि ''मैं 30 वर्ष से हत्या व दुष्कर्म के मामलों में जेल में हूँ और मै कभी सुधर नहीं सकता जेल से छूटते ही फिर हत्या व बलात्कार करूंगा। इसलिए मुझे फांसी नहीं बल्कि इच्छा मृत्यु दे दी जाये।

बेल्जियम सरकार ने उसके इस आग्रह को स्वीकार कर लिया, ज्ञात हो कि 13 वर्ष पहले इच्छा मृत्यु का कानून लागू हुआ था, परन्तु किसी कैदी को विश्व इच्छा मृत्यु देने का विश्व का यह पहला मामला है।

बेल्यिजम के बाद नीदरलैण्ड दूसरा देश है, जहाँ इच्छा मृत्यु कानून लागू है, नीदरलैण्ड में मृत्युदण्ड की सजा 1996 से समाप्त कर दिया गया है, वर्ष 2013 तक नीदरलैण्ड सरकार व न्यायालय के पास लगभग 1807 आवेदन प्राप्त हुए हैं, परन्तु नीदरलैण्ड में इच्छा मृत्यु के लिए शर्त यह है कि ''इच्छा मृत्यु मांगने वाला व्यक्ति होश–हवाश में हो तथा स्वयं ही इसके लिए बार–बार आग्रह कर चुका हो।''

परन्तु दिनांक 07/01/2105 को दुनियाभर के आलोचना के बाद बेल्जियम सरकार ने इच्छा मृत्यु पर रोक लगा दी ज्ञात हो कि बेल्जियम के संघीय यूथनेशिया कमीशन की मंजूरी प्रदान की थी।

प्रसन्नता की बात है कि उच्चतम न्यायालय की पाँच न्यायमूर्तियों की संविधान पीठ ने अपने आधुनिक निर्णय **ग्यान कौर बनाम पंजाब राज्य**[11] में **पी. रथिनम बनाम भारत राज्य**[12] के मामलें में दिए निर्णय को उलट दिया है और यह अभिनिर्धारित किया है कि अनु. 21 के अन्तर्गत ''जीवन के अधिकार'' के अन्तर्गत ''मरने का अधिकार'' नहीं शामिल है अतः भारतीय दण्ड संहिता की धारा 309 और 306 संवैधानिक हैं और विधिमान्य हैं। जीवन के अन्तिम क्षण तक गरिमा से ''मरने के अधिकार'' की तुलना की जीवन की सामान्य अवधि को कम करके अप्राकृतिक रूप से ''मरने का अधिकार'' से नहीं की जा सकती है।

न्यायमूर्ति श्री **जे.एस. वर्मा** ने सर्वसम्मति से न्यायालय का निर्णय सुनाते हुए कहा ''जीवन का कोई पहलू जो इसे गरिमामय बनाता है वह अनु. 21 में निहित है न कि वह जो इसे समाप्त करता है।''

''मरने का अधिकार'' यदि कोई है भी, तो वह ''जीने के अधिकार'' ने असंगत है जैसे ''मृत्यु'' और ''जीवन'' एक दूसरे के विरोधी है।

न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि ''जीवन का अधिकार'' जिसमें गरिमामय जीवन भी आता है का तात्पर्य ऐसा अधिकार है जो प्राकृतिक जीवन के अन्त होने तक बना रहता है। इसमें मृत्यु तक एक गरिमापूर्ण जीवन भी शामिल है और इसमें गरिमापूर्ण मृत्यु भी है। इसमें मरणासन्न व्यक्ति के गरिमापूर्ण मरने का अधिकार भी आता है जब वह जीवन के आखिरी क्षण की प्रतीक्षा में है किन्तु जीवनावधि के अन्त में गरिमापूर्ण ढंग से मरने के अधिकार को जीवन की प्राकृतिक अवधि को कम करके अप्राकृतिक मृत्यु का अधिकार नहीं समझा जा सकता है।

न्यायालय ने इस तर्क को भी अस्वीकार कर दिया कि मरने का अधिकार समाप्त कर दिया जाए या नहों ; इस पर चल रही चर्चा इसका पर्याप्त आधार है कि उक्त धारा अनु. 14 का उल्लंघन करती है अतः अवैध है। यह विषय विधान मण्डल के क्षेत्र में आता है। न्यायमूर्तियों ने एकमत से **मारूती श्रीपति दुब्ल बनाम महाराष्ट्र राज्य**[13] **तथा पी. रथिनम बनाम भारत संघ**[14] के मामलों में दिए निर्णय को उलट दिया है और आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय की पुष्टि की जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि भारतीय दंड संहिता की धारा 309 संविधान के अनु. 21 और 14 का उल्लंघन नहीं करती है और वह संवैधानिक है।

अरूणा रामचन्द्र शानबाग बनाम भारत संघ[15] में मुम्बई की पिंकी वीरानी ने अरूणा रामचन्द्र शानबाग के निकटतम मित्र का दावा करते हुए रिट याचिका दायर किया और प्रत्यर्थी को यह निर्देश दिये जाने के लिए प्रार्थना किया कि अरूणा की शांति से मृत्यु हो सकें इसलिए उसे भोजन पहुँचाना (Feeding) बन्द कर दिया जाए।

तथ्य यह थे कि अरूणा किंग एडवार्ड मेमोरियल हास्पिटल पारेल मुम्बई में नर्स थी। उस पर चिकित्सालय के एक मेहतर द्वारा कुत्ते की एक चेन उसके गर्दन में लपेटकर और इससे पीछे की ओर झटके से खींच कर हमला किया गया। उसने उसका बलात्कार करने का प्रयत्न किया किन्तु जब उसने देखा कि उसे मासिक धर्म हो रहा था तो उसने गुदा–मैथुन कर दिया। इस दौरान वह हिल डुल न सके इसलिए उसने चेन उसकी गर्दन के चारों ओर मरोड़ दिया। अगले दिन एक सफाई करने वाले व्यक्ति ने उसे पूरी तरह रक्त से लत–पथ, अचेत स्थिति में फर्श पर पड़ा हुआ पाया। यह अभिकथित किया गया कि कुत्ते की चेन से गला घुटने के कारण दिमाग को आक्सीजन पहुंचना बंद हो गया था तथा उसका दिमाग क्षतिग्रस्त हो गया था। कार्टेक्स या दिमाग के किसी अन्य भाग को क्षति हुई थी तथा दिमाग के स्टेम को आन्तरिक चोट पहुंची थी तथा सरवाईकल कार्ड को भी चोट पहुंची

थी। घटना उस समय की है जब वह लगभग 36 वर्ष की थी और न्यायालय का निर्णय देने जाने के समय उसकी आयु 60 वर्ष की थी। उसकी शारीरिक स्थिति बहुत कमजोर अभिकथित की गई। वह ढांचे की तरह रह गई थी तथा भार में वह पंख की तरह रह गई थी। उसके बेड सोर हो गए थे तथा सतत (vegetative) स्थिति में थी। उसका मस्तिष्क वास्तव में मृत हो चुका था। उसे केवल कुचलकर भोजन उसके मुंह में रखकर दिया जा सकता था। उच्चतम न्यायालय द्वारा गठित चिकित्सकों की समिति द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर पाया गया कि अरूणा का कुछ मस्तिष्क सक्रिय था यद्यपि यह बहुत कम था। वह अपने इर्द–गिर्द लोगों को पहचानती थी और अपनी पसन्द या नापसन्द कुछ गले की आवाज से और अपने हाथ को कुछ हिला डुला कर व्यक्त करती थी। वह अपनी पसन्द का भोजन मछली व चिकेन सूप पाने पर मुस्कुराती थी। उसकी नाड़ी की गति, श्वास की गति तथा रक्तचाप सामान्य थे। वह अच्छी तरह पलकें चला सकती थी और अपने चिकित्सकों को देख सकती थी। मुंह के द्वारा भोजन खिलाए जाने पर वह एक चम्मच भर पानी, कुछ शक्कर तथा मसला हुआ केला ले पाती थी। वह अपने ऊपरी होठों पर लगे केले के पेस्ट तथा शक्कर को भी चाटती थी और निगलती थी। कमरे में कई लोगों के आ जाने पर वह क्षुब्ध हो जाती थी किन्तु कोमलता से स्पर्श किये जाने या पुचकारे (caressed) जाने पर वह शांत हो जाती थी। वह भोजन पचा जाती थी तथा उसका शरीर अन्य अनैच्छिक कार्यो को किसी सहायता के बिना करता था। यह पूरी अधिसंभाव्यता थी कि वह जिस स्थिति में भी उसमें मृत्यु तक बनी रहेगी। उसके विक्षिप्तपन (dementia) में कोई सुधार नहीं हो सका था और बहुत वर्षो तक यथावत रहा था।

उसके माता–पिता की मृत्यु हो चुकी थी और उसके घनिष्ठ संबंधियों का जब से उस पर दुर्भाग्यपूर्ण हमला हुआ था उसमें कोई हित नहीं था। सतत निष्क्रिय स्थिति में होने वाले व्यक्ति का जीवन समर्थन (life support) वापस लेना या वह व्यक्ति जो इस मामले में निर्णय लेने के लिए अन्यथा अक्षम है, उच्चतम न्यायालय ने दो न्यायाधीशों, न्यायाधीश मार्कण्डेय काटजू तथा न्यायाधीश ज्ञान सुधा मिश्रा के माध्यम से निष्क्रिय सुख–मृत्यु की अनुगमित विधि प्रतिपादित किया जा सके कि इस विषय पर संसद द्वारा कानून बनाने तक बनी रहेगी।

1. जीवन समर्थन बन्द करने का निर्णय या तो माता–पिता या पति–पत्नी या अन्य घनिष्ठ मित्रों द्वारा लिया जाएगा। इनमें से सभी की अनुपस्थिति में ऐसा निर्णय निकटतम मित्र के रूप में कार्य करते हुए भी एक व्यक्ति के द्वारा अथवा व्यक्तियों के एक समूह के द्वारा भी लिया जा सकता है। यह रोगी की देख–रेख करने वाले चिकित्सकों द्वारा भी लिया जा सकता है। फिर भी निर्णय रोगी के सर्वाधिक हित में सदभावपूर्वक लिया जाना चाहिए।
2. यह चिकित्सालय के कर्मचारी थे जो लम्बे समय से अरूणा की देख–रेख कर रहे थे जो वास्तव में उसके मित्र थे जो इस प्रकार का निर्णय ले सकते थे किन्तु उन लोगों ने स्पष्ट रूप से अरूणा को जीवित रखे जाने की इच्छा व्यक्त किया था। यदि चिकित्सालय के कर्मचारी भविष्य में किसी समय अपना मन बदल देते हैं तो उन्हें मुम्बई उच्च न्यायालय को जीवन समर्थन वापस लेने के लिए आवेदन करना पड़ेगा।
3. यदि जीवन समर्थन वापस लेने का निर्णय निकटतम संबंधियों या चिकित्सकों या निकटतम मित्रों द्वारा भी लिया जाता है तो ऐसे निर्णय को संबंधित उच्च न्यायालय के अनुमोदन की आवश्यकता होती है क्योंकि इसका सदैव जोखिम है कि इस प्रावधान का इस्तेमाल कुछ अनैतिक (unscrupulous) व्यक्तियों द्वारा अनैतिक चिकित्सकों की मदद से यह प्रकट करने के लिए कि यह मामला अन्तिम (terminal) था जिसमें ठीक होने का कोई अवसर नहीं था सामग्री का कूटकरण करके दुरूपयोग किया जा सकता है। यह रोगी के संरक्षण, चिकित्सकों, संबंधी और निकटतम मित्र तथा रोगी के परिवार तथा लोक को पुनः विश्वास दिये जाने के हित में है। यह **पैरेंस पेट्रिया सिद्धान्त** (doctrine of parents patriae) के अनुसार भी है जो कि विधि का सुविख्यात सिद्धान्त हैं। उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन ऐसे अक्षम व्यक्ति का जीवन संरक्षक वापस लिया जाना स्वीकृत कर सकता है।
4. संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उपयुक्त आदेश या निर्देश देने के लिए न कि रिट के लिए प्रार्थना करते हुए आदेशों को पारित किए जाने के लिए एक याचिका की जा सकती है। निकटतम संबंधी या निकटतम मित्र या चिकित्सकों या चिकित्सालय के कर्मचारियों द्वारा उपरोक्त प्रकार के अक्षम व्यक्ति का जीवन समर्थन वापस लिए जाने के लिए अनुज्ञा के लिए प्रार्थना करते हुए दायर प्रार्थना पर उच्च न्यायालय को अनुच्छेद 226 के अधीन उपयुक्त आदेशों को पारित करने के लिए बहुत शक्ति देता है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

भारत में कदाचित ऐसी सोच दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है कि आत्महत्या करने के प्रयत्न को अपराध नहीं समझा जाना चाहिए और धारा 309 को कानून की पुस्तकों को हटा दिया जाना चाहिए। इस तर्क के पक्ष में कई कारण दिए जा रहे हैं जिनमें यह भी सम्मिलित है कि हर व्यक्ति को स्वयं के शरीर से किसी प्रकार से व्यवहार करने की स्वतन्त्रता है, और स्वयं का वध करना समाज की शान्ति और सौहार्द्र में बाधा नहीं पहुँचाता है, और न ही यह आतंक कारित करता है। इसके अतिरिक्त इसके समाप्त किये जाने के समर्थन में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि विश्व के कई देशों में, जिसमें ब्रिटेन भी सम्मिलित है, यह अपराध नहीं है, और अमरीका के कई राज्यों में भी ऐसी ही परिस्थिति है। समय के साथ–साथ चलते हुए दिल्ली उच्च न्यायालय ने **दिल्ली राज्य बनाम संजय कुमार**[16] में एक युवक को, जिसने कीटनाशक पीकर अपना जीवन समाप्त करने का प्रयत्न किया था, दोषमुक्त करते हुए यह कहा कि धारा 309 को बनाए रखना एक कालदोष है जो हमारे जैसे मानव समाज के लिए अयोग्य है। उस युवक को मनोचिकित्सा निदान गृह में भेजने के स्थान पर समाज

उसे आपराधियों के साथ मिलने–जुलने के लिए प्रसन्नतापूर्वक भेज देता है। समाज क ऐसे अनुपयुक्त लोगों के लिए पुलिस और कारागार ही नहीं बल्कि चिकित्सीय निदान गृहों की आवश्यकता है। न्यायालये ने यह स्पष्ट किया कि अभियोजन अपना अन्वेषण छह माह की अवधि के पश्चात् भी जारी रखे इस बात की अनुमति देने का कोई विशेष कारण नहीं दिखता। प्रत्यर्थी को पर्याप्त अभिघातज अनुभवों से गुजरना पड़ा और इसलिये विचारण न्यायालय के द्वारा प्रत्यर्थी को दोषमुक्त करने का आदेश हस्तक्षेप किये जाने योग्य नहीं है।

न्यायालय ने यह भी कहा कि इंग्लैण्ड में सुसाइड एक्ट, 1961 के पारित किए जाने के कुछ समय पश्चात् वहाँ के स्वास्थ्य मंत्रालय ने अनुशंसा जारी की जिसमें सभी डाक्टरों और प्राधिकारियों को यह सुझाव दिया गया कि आत्महत्या के प्रयत्न को एक चिकित्सीय और सामाजिक समस्या समझा जाए, जिसके बारे में यह कहा गया कि वह प्राचीन विधि के अन्तर्गत शुद्ध नैतिक और दांडिक प्रतिक्रिया की अपेक्षा आधुनिक ज्ञान और विचार के अधिक अनुकूल है।

यह अभिनिर्धारित करते हुए कि आत्महत्या का प्रयत्न धर्म के विरूद्ध नहीं है, न्यायालय ने आगे कहा कि जीवन इस संसार में ही समाप्त नहीं हो जाता और खोज जारी रहता है, कदाचित इस जीवन के समाप्त हो जाने के पश्चात्। अतः वह जो अपना जीवन समाप्त कर लेता है, वास्तव में अपने सम्पूर्ण जीवन को समाप्त नहीं करता। न्यायालय ने पुराणों से कई दुष्टान्तों को तथा महात्मा गांधी के आमरण अनशन और आचार्य विनोबा भावे के उपवास द्वारा जीवन को समाप्त करने को उद्धरित किया। यह अभिनिर्धारित करते हुए कि आत्महत्या का प्रयत्न अनैतिक नहीं है, न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि यदि मनुष्य के साथ अमानुषिक व्यवहार किया जा सकता है, जैसा कि हमारी जनसंख्या का एक बड़ा भाग है, जो अर्थपूर्ण मात्रा में दूसरों के गलत (अनैतिक) कार्यो के कारण है, तो अनैतिकता का आरोप नहीं हो सकता, और किसी भी स्थिति में नहीं लगाया जा सकता, यदि ऐसे मनुष्य या उनके जैसे, यह महसूस करते और सोचते हों कि और अपमान और यातना झेलने से तो इस दुःखी जीवन को समाप्त कर देना अधिक अच्छा होगा। जो सदगुण की मांग करते हैं उन्हें सदगुण का स्वय पालन करना चाहिए, और यह भी देखना चाहिए कि अन्य भी ऐसा करें।

आत्महत्या के कारण होने वाले सामाजिक कुप्रभावों के बारे में न्यायालय ने स्पष्ट किया कि इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन मामलों में आत्महत्या के प्रभाव कष्ट पहुँचाने वाले हैं, परन्तु यह भी अत्यन्त संदेह की ही बात है कि आत्महत्या का प्रयत्न करने वाले व्यक्ति को विचारण के लिए आरोपित करने से आत्महत्याएँ नहीं होंगी। हत्या में मृत्युदंड के उपबंध के पश्चात् भी क्या हत्याएं रूक गई हैं। पुनः सामाजिक कुप्रभाव सम्बद्ध व्यक्ति के मृत्यु के कारण होते हैं, उस व्यक्ति के द्वारा नहींजिसने आत्महत्या करने का प्रयत्न किया। वास्तव में आत्महत्या विफल रहने वाले व्यक्ति परिवार के लिए लगभग उतने ही उपयोगी बने रहते हैं जितना वे पहले थे। अतः दंडित किए जाने वाला व्यक्ति वह है जिसने आत्महत्या की थी, पर वह विधि की पहुँच से परे है और उसे दंडित नहों किया जा सकता। इससे उस व्यक्ति को दंडित करने का कोई कारण उत्पन्न नहीं होता जिसे दंडित नहीं किया जाना चाहिए।

दयामृत्यु (यूथेनेशिया) के प्रश्न पर बात करते हुए न्यायालय ने कहा कि वह केवल इतना ही कहकर सन्तुष्ट होगा कि व्यक्तियों को आत्महत्या करने की अनुमति देन के लिए चूंकि दयामृत्यु पर विधान बनाने के पक्षधरों को कोई प्रोत्साहन मिलेगा इसलिए इसके न्यायोचित्य को कम महत्व देना या कम किया जाना अपेक्षित नहीं है।

इस प्रश्न पर कि इस न्यायिक निर्णय का उस व्यक्ति के दायितव पर क्या प्रभाव पड़ेगा जो आत्महत्या में सहायता देता है या आत्महत्या को दुष्प्रेरित करने वाले व्यक्ति के दायित्व के सम्बन्ध में विधि बिल्कुल भिन्न हो सकती है, जैसा कि वास्तव में इंग्लैण्ड में सुइसाइड एक्ट, 1961 के अन्तर्गत है। मुंबई उच्च न्यायालय के निर्णय ने सही रूप में यह अन्तर किया है। यही कारण है जिससे आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के द्वारा व्यक्त की गई यह आशंका न्यायोचित नहीं लगती कि यदि धारा 309 को अवैध घोषित किया जाए यह अत्यन्त सन्देहपूर्ण होगा कि क्या धारा 306 बची रह सकेगी, क्योंकि आत्मवध की संकल्पना दूसरों का आत्मदाह करने के लिए दुष्प्रेरित करने से बिल्कुल भिन्न है। उनके आधार भिन्न है, क्योंकि एक मामलें में एक व्यक्ति स्वयं का जीवन समाप्त करता है और दूसरे में एक तीसरे व्यक्ति को अपना जीवन समाप्त करने के लिए दुष्प्रेरित किया जाता है।

अनुच्छेद 21 के सन्दर्भ में न्यायालय ने स्पष्ट किया कि किसी भी प्रकार से किसी व्यक्ति को अपनी हानि, असुविधा या अरूचि कारित करते हुए जीवन जीने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। दैहिक स्वन्त्रता अनुच्छेद 21 जिसके सम्बन्ध में है, अपने भीतर बाध्यकारी जीवन न जीने का अधिकार भी समेटे हुए है। विधि क्रूर नहीं हो सकती, पर वह ऐसी हो जाएगी यदि वे व्यक्ति जो आत्महत्या का प्रयत्न करते हैं अपराधियों की तरह समझे जाते हैं और उन्हें दंडित करने के लिए अभियोजित किया जाता है, जबकि जिस बात की उनको आवश्यकता है वह है मानसिक चिकित्सा, क्योंकि आत्महत्या मूल रूप से सहायता की मांग है। यह पुनः स्मरण रहे कि वह विधि जो क्रूर है संविधान के अनुच्छेद 21 के प्रतिकूल है।

जब **पी. रथिनम**[17] के केस पुनर्विचार हेतु उच्चतम न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष यह मामला आया, इसे संविधान पीठ के समक्ष भेजने का निर्णय किया और अंततः पांच सदस्यीय संविधान पीठ ने इसकी सुनवाई की। न्याय–मित्र (एमीकसन क्यूरी) के रूप में न्यायालय ने वरिष्ठ अधिवक्ताओं नरीमन और सोराबजी को भी आमन्त्रित किया एवं उनके विचार सुने। न्यायमूर्ति जे.एस. वर्मा ने संविधान पीठ की ओर से निर्णय दिया। न्यायालय ने कहा कि धारा 309 को बनाए रखना इस बात से बिल्कुल अलग बात है कि यह धारा सवधानिक है या नही, जिसे केवल संविधान के उपबंधों के सन्दर्भ में ही देखा जा सकता है। विश्व के सन्दर्भ में यह प्रश्न कि – क्या आत्महत्या का प्रयत्न अपराध होना भी चाहिए या नहीं और क्या दया–मृत्यु को वैध बनाया जाना चाहिए या नहीं, धारा 309 की संवधानिक के प्रश्न से अलग है। पी.

रथीनम के मामले में उच्चतम न्यायालय के द्वारा यह स्पष्ट किया जाना कि बोलने की स्वतन्त्रता और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता में न बोलने की स्वतन्त्रता और अभिव्यक्त न करने की स्वतन्त्रता भी सम्मिलित है, संगम या संघ बनाने की स्वतन्त्रता में संगम या संघ न बनाने की स्वतन्त्रता भी सम्मिलित है और भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण की स्वतन्त्रता में भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण न करने की भी स्वतन्त्रता सम्मिलित है, और इसलिए प्राण की स्वतन्त्रता के बीच एक मुख्य अन्तर है जिसके कारण उन मामलों के पृष्ठ में कारणों को प्राण की स्वतन्त्रता के कारणों में लागू नहीं किया जा सकता। उक्त अधिकरों की प्रकृति और प्राण के अधिकार की प्रकृति में विशेष अन्तर है। जब व्यक्ति आत्महत्या करता है तब उसे कुछ सकारात्मक प्रत्यक्ष कार्य करने पड़ते हैं जो अन्य अधिकारों में नहीं करने पड़ते हैं, जिन्हें अनुच्छे 21 के अन्तगत प्राण के अधिकार में सम्मिलित नहीं किया जा सकता। 'प्राण की पवित्रता' के महत्वपूर्ण पहलू की भी अनदेखी नहीं की जा सकती। अनुच्छेद 21 प्राण और दैहिक स्वतन्त्रता को संरक्षण प्रदान करता है और किसी भी कल्पना के आधार पर इसमें 'प्राण को समाप्त करना' सम्मिलित नहीं किया जा सकता। व्यक्ति को अपने जीवन को समाप्त करने देने की अनुमति के पृष्ठ में चाहे कोई भी दर्शन हो, अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत प्राण की स्वतन्त्रता में प्राण हरने, अर्थात मृत्यु कारित करने, की स्वतन्त्रता को सम्मिलित नहीं किया जा सकता। अनुच्छेद 21 में 'प्राण का अधिकार' एक प्राकृतिक अधिकार है, जबकि आत्महत्या प्राण (जीवन) की अप्राकृतिक समाप्ति है, और इसलिए यह 'प्राण के अधिकार' की संकल्पना के प्रतिकूल है।

इस मत पर दयामृत्यु (सुख मृत्यु) का समर्थन है कि निरन्त निष्क्रिय अवस्था में अस्तित्व प्राण की 'पवित्रता' या 'मर्यादा के साथ जीवित रहने' के सिद्धान्त के साथ असम्बन्धित होने के कारण अन्तिम रोग से रोगग्रस्त रोगी के लिए लाभ नहीं है, अनुच्छेद 21 की परिधि निर्धारित करने के लिए कि क्या उसके अन्तर्गत 'प्राण के अधिकार' में 'मृत्यु के अधिकार' भी सम्मिलित है बिल्कुल भी सहायक नहीं है। 'प्राण का अधिकार' एवं मानव मर्यादा सहित जीवित रहने के अधिकार का अर्थ प्राकृतिक जीवन के अन्त तक ऐसे अधिकार का अस्तित्व है। इसमें मृत्यु होने के समय तक मर्यादापूर्ण जीवन का अधिकार सम्मिलित है, जिसमें मृत्यु की मर्यादापूर्ण प्रक्रिया भी सम्मिलित है। दूसरे शब्दों में, इसमें मरने वाले व्यक्ति की मृत्यु होने के अन्तिम क्षणों तक अधिकार भी सम्मिलित हो सकता है। परन्तु जीवन के अन्त में मर्यादापूर्ण 'मृत्यु के अधिकार' की बराबरी अप्राकृतिक मृत्यु जिससे जीवन की स्वाभाविक अवधि को कम कर दिया गया हों, में नही की जा सकती।

जहाँ तक धारा 309 के संविधान के अनुच्छेद 14 के प्रतिकूल होने का प्रश्न है, पी. रथीनम के मामले में भी यह अभिनिर्धारित किया गया था कि धारा 309 अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण नहीं करती, और इस बात से सहमत हैं। आत्महत्या के प्रयत्न को दंडनीय बनाए रखने की वांछनीयता और विधि आयोग द्वारा इस उपबंध को समाप्त किए जाने की सिफारिश से भी यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि धारा 309 अनुच्छेद 14 के प्रतिकूल है। यदि इन बातों को महत्वपूर्ण माना भी जाए तो भी इस धारा के अधीन दंड की अवधि के सम्बन्ध में न्यायालय को दिया गया विवेकाधिकार, जिसमें किसी आवश्यक न्यूनतम दंड या कारावास का दंड भी अनिवार्य नहीं है, इस धारा की कठोरता, यदि काई हो तो, को कम करता हैं। जुर्माने की राशि के रूप में कोई न्यूनतम राशि अनिवार्य नहीं की गई है, और दंड के रूप में जुर्माने में कम राशि भी अधिरोपित की जा सकती है। उपयुक्त कारणों से यह अभिनिर्धारित किया गया कि धारा 309 अनुच्छेद 14 के प्रतिकूल नही।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अच्चूतन पिल्लई पी.एस. : क्रिमिनल लॉ (7वां संस्करण) 1990
2. गौड़ हरिसिंग : डॉ पेनल लॉ (21वां संस्करण) 1964
3. दानसिंह चौधरी : भारतीय दण्ड संहिता गुरूकृपा प्रकाशन इन्दौर
4. भारतीय विधि संस्थान : एसेज ऑन इण्यिन पेनल कोड
5. राघवन : लॉ आफ क्राइम्स (तृतीय संस्करण) 1980
6. रतनलाल धीरजलाल : डि लॉ ऑफ क्राइम्स
7. निमूति के.आई.डॉ : क्रिमिनल जस्टिस 2004
8. हेल्सबरीज लॉ इन इग्लैण्ड : तृतीय संस्करण 1955
9. आचार्य डा. दुर्गा दास बसु : भारत का संविधान– एक परिचय, सातवां संस्करण, 2000, वाधवा एण्ड कठ
10. कैलास राय डॉ : द कास्टि्यूशनल लॉ ऑफ इंडिया, 5 वां संस्करण, 2003 सेंट्रेल लॉ, पठिल केशन्स, इलाहाबाद
11. बजकिशोर शर्मा : भारत का संविधान, एक परिचय प्रेरिस हाल ऑफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नइ दिल्ली
12. सिरवई एम.एम : कास्टीट्यूशनल लॉ ऑफ इंडिया, प्रथम सस्करण एन.एम त्रिपाठी प्राइवेट लि., बम्बई
13. रामाचन्द्रनः फन्डामेन्टल राइट्स एण्ड कास्टीट्यूशनल रेमेडीज, भाग 2 प्रथम संस्करण, ईस्टर्न बुक कम्पनी, लखनऊ
14. श्रीमती दुबल बनाम महाराष्ट्र राज्य 1987 क्रि.ला.ज. 743 (बम्बई)
15. चेत्ता जगादेश्वर बनाम आन्ध्रप्रदेश राज्य 1998 क्रि. ला.ज. 549
16. पी. रथिनम नागभूषण पटनाइक बनाम भारत संघ ए.आई. आर. 1994 सु.को. 1844 (यह निर्णय श्रीमती ज्ञान कौर बनाम पंजाब राज्य ए.आई.आर. 1996 सु.को. 125 द्वारा उलट दिया गया है।)
17. श्रीमती ज्ञान कौर बनाम पंजाब राज्य ए.आई.आर. 1996 सु.को. 125
18. अरूणा रामचन्द्र शान बाग बनाम भारत संघ, डब्ल्यू. पी.सी. 115, 2009
19. राम सुन्दर दुबे बनाम राज्य, ए.आई.आर. 1994, सु. को. 561
20. दिल्ली राज्य बनाम संजय कुमार 1985 क्रि.ला.ज. 931 (दिल्ली)

पाद्टिप्पणी

1. सैमुअल बिलियन्स, 1895, Killing Law
2. Alferd Hoche, 1920, Death Assitance
3. National Conference 1976 Japan, 3 November

4. (पारा–5, सुरह, अलनिशा, आयत नं. – 29)..... पेज नं. 261 कुरानिक प्रिज्म (मंशूर अल कुरआन) कम्पायलर – अब्दुल हकीम मलिक एडिशन 1999, किताब भवन, 1784 कालामहल, दरियागंज नई दिल्ली पिनकोड – 110002
5. दैनिक भास्कर दिनांक 6/01/2015
6. 1987 क्रि.ला.ज. 743 (बम्बई)
7. 1998 क्रि.ला.ज. 549
8. ए.आई.आर. 1994 सु.को. 1844
9. 1987 क्रि.ला.ज. 743 (बम्बई)
10. 1.1987 क्रि.ला.ज. 743 (बम्बई)
11. ए.आई.आर. 1996 सु.को. 125
12. ए.आई.आर. 1994 सु.को. 1844
13. 1987 क्रि.ला.ज. 743 (बम्बई)
14. ए.आई.आर. 1994, सु.को. 1844
15. ए.आई.आर. डब्ल्यू.पी.सी. 115, 2009
16. क्रि.ला.ज. 1931 दिल्ली
17. ए.आई.आर. 1994, सु.को. 1844